New Man International Journal of Multidisciplinary Studies
(UGC Approved Journal No. 45886)
ISSN: 2348-1390
Impact Factor: 4.321 (IIJIF)

**31.**

# हिन्दी उपन्यास– अदृश्ट सत्ता का धार्मिक पक्ष

डा. (श्रीमती) प्रमिला टण्डन
पूर्व प्राचार्या
विभागाध्यक्ष हिन्दी
राजर्षि टण्डन महिला विद्यालय, मालवीय नगर, इलाहाबाद।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का आधार आध्यात्मिक है, धर्म भारतीयों का मूलमंत्र है। इतिहास के पन्नों को पलटने से हमें पता चलता है कि हमारा देश कितना सहनशील रहा है और इसकी कारण हमारे देश में इतने सारे धर्मों का आगमन हुआ है और इनको सहज रूप से स्वीकार भी किया गया, इसी स्वीकारोक्ति ने इन धर्मों के पथ को विकास के पथ पर अग्रसर किया, विकास के इसी क्रम में आधुनिक हिन्दी उपन्यास के उद्भव प्रारम्भिक विकास, प्रेमचन्द्र पूर्व हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्द्र युगीन हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्द्र परवर्ती हिन्दी उपन्यास एवं स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी उपन्यास में आस्तिकता, मूर्तिपूजा और कर्मकाण्ड का स्वरूप स्पष्ट करते हुए दैव, भाग्य और अदृष्ट की सत्ता की व्याख्या है। कर्मवाद और पुनर्जन्म में विश्वास का उल्लेख करते हुए जीव और ब्रह्म के स्वरूप का भी निरूपण है। उपन्यासकारों ने अनेकों उपन्यास पर अपनी विचार लेखनी चलायी है साथ ही साथ कथा की अन्तर्भावनाओं में नियतिवाद अर्थात् अदृष्ट सत्ता को केन्द्र में रखा है। नियतिवाद के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी उपन्यास में नियतिवाद के धार्मिक पक्ष को महत्व दिया है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः प्रायश्चित्, दानपुण्य, मन्दिर पूजन, मूर्ति उपासना लग्न विचार, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, धार्मिक साम्प्रदायिकता विद्वेष, पाप पुण्य, तीर्थयात्रा, कर्मकाण्ड, कर्मफल प्रकृति, ईश्वर और भाग्य को विशेष स्थान दिया है।

**धर्म का परम्परागत स्वरूपत्र**

परम्परावादी धार्मिक अवधारणा के अन्तर्गत भारतीय धर्मशास्त्र की एव सुविस्तृत परम्परा विकसित हुई है। जिसका आधार विभिन्न मनीषियों और ग्रन्थों में विशेष रूप से वेद ग्रन्थ, धर्मसूत्र, गौतम सूत्र, बोधायन धर्म सूत्र, वशिष्ट धर्मसूत्र, विष्णु धर्मसूत्र, हारीत धर्मसूत्र, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वैश्वानस धर्मप्रश्न, अत्रिउशना, कश्यप एवं काश्यप च्यवन याज्ञवल्वय स्मृति, पशशर स्कृति, भारत स्मृति पुलस्तय प्रचेता, प्रजापति मारीचि, यम, विश्वामित्र जितेन्द्रिय बालक, कामधेनु, हलायुध मनदेव भट्ट, प्रकाश पारिजात, गोविन्दादास, हरिहर हरिदन्त, श्रीदत्त उपाध्याय, हरिनाथ माधवाचार्य मदनपाल, शूलपाणि, रूद्रधर, वाचस्पति मिश्र नृसिंह प्रसाद, गोविन्दानन्द, रघुनन्दन, नारायण भटटोरानंनद, कमलाकर भट्ट, नीलकंठ भट्ट, बालकृष्ण भट्ट, काशीनाथ उपाध्याय आदि उल्लेखनीय है।

## धर्म विषयक परम्परागत मान्यताएं –

धर्म के स्वरूप की मान्यता भारतवर्ष के ग्रामीण और नागरिक समाज में है। वह मुख्यतः भावना श्रद्धा और भक्ति मूलक है। एक सामान्य हिन्दू जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न संस्कारों को धर्म से अनुप्राणित और निर्दिष्ट अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्वीकार करता है। ई०वी० टाइलर जैसे विचारकों ने संभवतः इन्हीं धार्मिक मान्यताओं की व्यापकता को परिलक्षित करते हुए यह कहा था कि धर्म आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास करता है। भारतीय समाज में धर्म को लौकिक जगत से परे माना गया है क्योंकि वह केवल विश्वास की वस्तु है और उसमें तर्क अथवा लक्ष्य के लिए कोई स्थान नहीं।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कारण देश में अनके धार्मिक परिवर्तन किये गये। एक ओर ईसाई मिशनरियों का धर्म प्रचारक सम्बन्धी रूप तथा दूसरी ओर प्राचीन धार्मिक मान्यताओं का उदय भी यहां पर एक साथ देखा जा सकता है। इस युग में धर्म सम्बन्धी अनेक आन्दोलन हुए, यद्यपि धर्म की मूल अवधारणाओं में अनेक परिवर्तन करने के प्रयत्न किये गये परन्तु धर्म का ढांचा आज भी पूर्ववत हो रहा है। हिन्दू धर्म वेद, पुराण, ब्राम्हण ग्रन्थ, उपनिषद, रामायण, महाभारत, महाकाव्य, आरण्यक आदि की मान्यताओं पर टिका है। यद्यपि नवीन शिक्षा के विकास शिक्षा के विकास ने धर्म संबन्धी अनेक परिवर्तन किये परन्तु अशिक्षित वर्ग इस परिवर्तन को नहीं स्वीकारता, इसलिए धर्म प्राचीन रूढ़ियों अन्ध विश्वासों पर ही टिका हुआ है। ईसाई धर्म के प्रचार के कारण हिन्दू धर्म में भी कुछ शिथिलता अवश्य आने लगा है। अंग्रेजों ने छुआछूत, खानपान, जाति व्यवस्था आदि सभी नियमों का विरोध किया, अतः भारतीय समाज सुधारकों के मन में धर्म और समाज के प्रति नवीन दृष्टिकोण का अभ्युदय हुआ। इस प्रकार धर्म सुधार सम्बन्धी आन्दोलन चलने लगे। सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना आदि इसके प्रयाग हैं। राजा राम मोहन राय, महादेव गोविन्द राना डे, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द तिलक, गोखले, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, गांधी आदि समाज सुधारकों ने धर्म के सुधार और प्रसार के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। सती प्रथा, नरबलि, बाध्याडम्बरों का उन्होंने विरोध किया। धार्मिक दृष्टि से पीड़ित वर्गों के लिए भी इन्होंने सामाजिक संस्थाएं खोली। भारत सेवक समाज, भारतीय दलित जाति संघ, इन संस्थाओं ने धर्म का परिष्कृत तथा संशोधित रूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। इन्होंने धर्म, जाति की अपेक्षा मानवता को मानव का सच्चा धर्म बताया। हिन्दू धर्म का एक वर्ग ऐसा भी है जो पुनर्जन्म में आस्था रखता है। ऐसी धारणा है कि वर्तमान के सुख-दुख मूल रूप से पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है। न्याय, अन्याय, सफलता, असफलता सब भाग्य की देन है। इस प्रकार मनुष्य भाग्य वादी था, परन्तु आधुनिक युग में वह व्यक्ति वादी हो गया।

**मुर्ति पूजा, मंदिर निर्माण एवं नियतिवाद–**

भारतीय धर्मशास्त्र में नियतिवादी दर्शन का जो स्वरूप परिलक्षित होता है, उसके मूल में आस्तिकतावादी विचारधारा अवश्य विद्यमान रही है। एक सामान्य धर्मनिष्ठ व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि ईश्वर साकार है और विभिन्न अवतारों के रूप में उसकी मूर्तियों की स्थापना विभिन्न मन्दिरों में होती है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने ''गीली यादें'' शीर्षक उपन्यास में यह उल्लेख किया है कि अनेक शासकों ने मन्दिरों का निर्माण कराकर अपनी भक्ति भावना का और ईश्वर निष्ठा का परिचय दिया था।

शारदा प्रसाद पाठक लिखित ''कली और कांटा शीर्षक उपन्यास में मूर्तिपूजा और मन्दिर में ईश्वर दर्शन की अनन्य महिमा का गान किया गया है।

''सबहिं नचावत राय गोसाई'' में वर्ण व्यवस्था के परम्परागत रूप के प्रति वर्मा जी की आस्था समाप्त दिखाई पड़ती है। इसलिए उन्होंने मानव जीवन की तीन प्रमुख वृत्तियों- बुद्धि, भाग्य और भावना के माध्यम से बनिया, क्षत्रिय और ब्राह्मण के यथार्थ स्वरूप की अभिव्यंजना की है जो कि व्यंग्यात्मक शैली में होने के कारण अतुलनीय है। जिस प्रकार ''टेढ़े मेढ़े रास्ते'' और ''सबहि नचावत राम गोसाई'' में परामपरागत वर्ण व्यवस्था के दकियानूसी सिद्धान्तों की खिल्ली उड़ाई गयी है। वैसे ही ''भूले बिसरे चित्र'' तथा प्रश्न और मरीचिका में वर्मा जी ने इस व्यवस्था के विगलित अंगो पर प्रहार किया है।

भगवती चरणवर्मा ने अपने लघु उपन्यास ''अपने खिलौने'' में वर्ण व्यवस्था के अनुपयोगी स्वरूप पर अच्छे खासे हास्य व्यंग्य चित्र निर्मित कर ब्राह्मत्व के आडम्बरपूर्ण संस्कारों पर प्रहार किया।

प्रताप नारायण श्रीवास्तव लिखित ''बेबसी'' शीर्षक उपन्यास में साम्प्रदायिक विद्वेष के उस कलुषित रूप का चित्रण है जिसमें कई पीढ़ियों तक इसके प्रायश्चित का संकेत किया है। अमृतलाल नागर लिखित ''शतरंज के मोहरे'' शीर्षक उपन्यास में भी साम्प्रदायिकता को मानवता से ऊपर रखकर उसके लोमहर्षक परिणाम दर्शाये गये हैं।

साम्प्रदायिकता की भावना का एक रूप सच्चिदानन्द धूमकेतु लिखित ''माटी की महक'' उपन्यास में चित्रित किया गया है। उस उपन्यास में बिहार के रायपुर ग्राम की धार्मिक प्रवृत्ति को प्रस्तुत किया है।

**ईश्वरवादी विचारधारा और ईश्वर में आस्था–**

ईश्वरवादी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यहां उल्लेखनीय है वह आस्तिकता अथवा ईश्वर के विश्वास से संबन्धित, है। वास्तव मे नियति और ईश्वर को पर्यायवासी रूप में प्रयुक्त किया गया है। हिन्दी के बहुसंख्यक उपन्यासकारों ने ईश्वर को ही नियति का संचालक माना है कि जो सर्व शक्तिमान और शाश्वत है। ईश्वर जीव को उसके कर्मों के अनुसार अच्छी, बुरी योनियों में भेजना तथा सुख दुख की व्यवस्था करता है। उसकी इच्छा के विरूद्र आचरण करने में ब्रह्म भी असमर्थ है।

यशपाल ने अपने ''बारहघंटे'' शीर्षक उपन्यास में ईश्वर की सहायता को सर्वाधिक सौभाग्य का सूचक माना है। भागवान तो नर, नारियों के जीवन को सार्थक और सफल बनाने के लिए प्रेम की शक्ति उत्पन्न कर देता है और प्रेम की शक्ति चरितार्थ होने के लिए अपनी आवश्यकता पूर्ति का यान करती रहती है।

कुवंर साहब और उर्वशी की नाट्कीय भेट को उक्त कृति में ईश्वर की अनुकंपा या वरदान माना गया है। उर्वशी का मन धक-धक कर रहा था। शरीर से पसीने छूट रहे थे। आज अचानक वह भी संतुलन खो बैठी और उसने अपने को कुवंर साहब को समर्पित कर दिया। कुवंर साहब मुस्कराए और मन ही मन बोले, यदि आज भगवान से और कुछ मांगता तो मिल सकता था पर इससे अधिक क्या मांग सकता था।

शूलपाणि लिखित ''एक और कुरूक्षेत्र'' उपन्यास में ईश्वर की लीला को अटल मानते हुए उसमें अनन्य आस्था व्यक्त की गई और यह भी विश्वास प्रकट किया गया है कि किसी भी प्रकार के संकट के समय ईश्वर ही एक मात्र रक्षक होता है। असल में भगवान की अद्भुत लीला माननी चाहिए। गर्दिश जब आती है तब ऐसे ही आती है मां। तू भगवान से प्रार्थना कर।

विष्णु प्रभाकर लिखित ''निशिकांत'' शीर्षक उपन्यास में यह संकेत है कि ईश्वर सबकी सुनता है और सच्चे मन से की गयी याचना पर अवश्य अनुकंपा करता है वह सदा प्रथम आता भी और इस बार तो उसने विष्णु भगवान की प्रस्तर प्रतिमा के आगे घी के दिये जलाकर तथा पेड़े चढ़ाकर प्रार्थना भी की थी।.....भगवान मेरा जाने, मैं सच कहता हूं कि तुम आत्महत्या कर रहे हो। मैं जानता हूं कि तुम इस नौकरी को पसन्द नही करते परन्तु फिर भी छोड़ने की शक्ति तुम में नहीं है। अज्ञान पाप है परन्तु ज्ञान का दमन उससे भी बड़ा पाप है। रामायण में हनुमान यही पाप करने जा रहे थे और यदि जामवन्त उन्हें सचेत न कर देते तो भारत का इतिहास कुछ और होता। भगवान जाने, आदमी अपने अहम में ही अपनी मनुष्यता से इन्कार कर देता है।

ललित जोशी लिखित ''रामबोला'' शीर्षक उपन्यास में इस शाश्वत सत्य का उद्घोष है कि ईश्वर एक है। वह नानारूप धारण करता है। सारी दुनिया के कण-कण में वह समाया हुआ है। डा. पी. वरूण लिखित 'अमर ज्योति' शीर्षक उपन्यास में यह संकेत किया गया है कि बहुधा संसार में सद्पुरूषों को कष्ट उठाते और सदकर्मों का विपरीत परिणाम भोगते देखकर ईश्वर से आस्था डगमगाने लगती है: ''कितने वीभत्स अपराध दैनिक जीवन में नित्य प्रति हुआ करते हैं परन्तु ईश्वर है कि हाथ पर हाथ

धरे बैठा रहता है। विचार कर लीजिए ईश्वर की उत्पत्ति पर ही कहा जाता है ईश्वर ने सभी जीव जन्तुओं को बनाया है। हिरण घास खाकर जंगल में ज़िन्दा रहता है और शेर उसी हिरण को मार कर खा जाता है जो निर्दोष है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का खून कर देता है सिर्फ अपने द्वेष व जलन को शान्त करने के लिए परन्तु ईश्वर यह सब कुछ देखता रहता है। अगर ईश्वर होता तो कम से कम अपने निर्माण को तो नष्ट होने से बचाता।

इसी प्रकार रामेश्वर शुक्ल अंचल लिखित 'उल्का' शीर्षक उपन्यास में ईश्वर संबंधी विश्वास को व्यक्त करते हुए कथा की नायिका मंजरी गांधी जी के विचारों को अपने मत से पुष्टि करती हुई कहती है: ''दुख की भांति में जीवन भीरूता की आत्म प्रवंचना में संकट की धड़कन भरी माया में सुख के बंधनों की मिथ्यानुभूति में मानव किस अवलम्ब को लेकर चले? आप जैसा बलवान स्वच्छन्द मानव नहीं वरन् जन मानव। महात्मा गांधी से एक महाशय ने कहा था, ''आपकी राजनीतिक संघर्ष की रूपरेखा में ईश्वराधना और आस्तिकता पर इतना आग्रह क्यों? आपके चलाए आन्दोलन में भाग लेने वाले के लिए ईश्वर पर विश्वास और नियमित प्रार्थना पर क्यों इतना ज़ोर दिया जाता है? उन्होंने उत्तर दिया ''ईश्वर पर विश्वास सत्याग्रह की पहली शक्ति और हिंसा अपने से हजारों गुना वही पशु शक्ति और हिंसा की ताड़ना, अत्याचार, शारीरिक निर्यातन और दण्ड विधान मानव किस बल पर भोगेगा? कैसे वह प्रतिलक्षण अन्याय के अनल में पिघलते मनोबल को कायम रखेगा? अपने साहस और बल को अनुकूल रखने वाला कौन सा साधन उसके पास होगा? मैं भी आपसे यह पूछती हूं केवल सत्याग्रह और राजनैतिक आन्दोलन में नहीं, साधारण दैनिक जीवन में विशेष कर नारी के प्रतिधारण टूटते मनोबल को किसकी अनुभूति दृढ़ रखेगी? आस्तिकता और ईश्वर की आत्मा के अस्तित्व को लेकर मैं किताबी, शास्त्रीय बहस नहीं करना चाहती।''

मंजिल से आगे उपन्यास में महावीर अधिकारी की नायिका शकुन्तला कहती है- जो बुराई के रास्ते पर चलते हैं उन्हें भगवान की बातें अच्छी नहीं लगतीं, उन्हें शैतान की ही बातें अच्छी लगती हैं। बेटी, पर याद रखना प्रभु के वे शब्द कि वासना का गुलाम बनकर आदमी नारकीय यंत्रणाए सहता है। उसे शान्ति नहीं मिलती। शान्ति तो गरीबों, दीन-दुखियों की सेवा में अपने आपको खो देने से मिलती है। प्रार्थना करो कि भगवान तुम्हें रोशनी दें और सत्य पथ दिखाएं। प्रभु की सेवा में अपने मन का पाप खोलकर रख दो, प्रभु तुम पर कृपा करेगें।

ईश्वर और ईश्वर की महिमा को गांधीवाद में भी बहुत महत्व दिया गया है। इस संबन्ध में गांधी जी का विचार है कि ''ईश्वर जीवन है। अच्छाई ईश्वर है। उससे पृथक जिस अच्छाई की धारणा की जाती है वह जीवन रहित है और तभी तक चलती है जब तक लाभप्रद रहती है। यही बात दूसरे नैतिक गुणों की है। वह गुण हममें तभी रह सकते हैं जब हम उनको ईश्वर से सम्बन्धित करके उन पर विचार करें और उनका विकास करें ''गांधी जी ने एक स्थान पर ईश्वर सम्बन्धी अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा था कि ईश्वर हमारी समस्त त्रुटियों को क्षमा कर देता है। शकुन्तला भी बेटी को यही शिक्षा देती है वह ईश्वर के समझ अपने हृदय निष्कपट भाव से व्यक्त कर दे और उससे क्षमा मांगे।

गांधी जी की धर्म विषयक धारणा नैतिक पक्ष प्रधान हैं क्योंकि नीति रहित धर्म निरर्थक है। उनकी मान्यता है कि सच्ची नीति में बहुत अंशों में धर्म का समावेश हो जाता है। नीति के समान ही वह अहिंसा को भी धर्म का पूरक मानते थे क्योंकि उनके विचार से वह धर्म का परिशोधन करने में समर्थ है। उसके द्वारा मनुष्य दूसरे के धर्मों का भी उसी प्रकार से आदर करना सीखता है जितना वह अपने धर्म का करता है। इस प्रकार के विचार न केवल गांधी दर्शन में धर्म का स्वरूप निरूपित करते हैं वरन् धर्म के लोक कल्याणकारी पक्ष के अनुगमन पर भी बल देते हैं। उनमें यह भी संकेत मिलता है कि धर्म केवल ब्रह्माचार्य अथवा संकुचित सम्प्रदाय नहीं है। वरन् अत्यन्त विशाल और व्यापक है। इसी प्रकार इसी क्रम में अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने उत्कृष्ट श्रद्धा को धर्म की संज्ञा दी है। इसकी कसौटी पर हिन्दू धर्म खरा उतरता है क्योंकि उनके विचार से हिन्दू धर्म की खूबी उसकी सर्वव्यापकता और सर्वसंग्राहकता है।

हिन्दू धर्म की देन और उपलब्धियों का निरूपण करते हुए भी गांधी जी ने विस्तार से विचार व्यक्त किये हैं। उनका मत है कि हिन्दू धर्म जीवित धर्म है। उसमें संसार के नियमों का भी अनुसरण होता है। मल रूप से तो वह एक ही है परन्तु वृक्ष रूप से वह विविध प्रकार का है। उस पर ऋतुओं का असर होता है। उसका बसन्त भी होता है और पतझण भी। उसकी शरद ऋतु भी होती है और उष्ण भी वर्षा से भी वह वंचित नहीं रहता। उसके लिए शास्त्र है औश्र नहीं भी। उसका एक ही पुस्तक पर आधार नहीं है। गीता सर्वमान्य है लेकिन वह केवल मार्गदर्शन है। हिन्दू धर्म गंगा का प्रवाह है। मूल में यह शुद्ध है। जिस प्रकार गंगा की प्रवृत्ति अन्त में पोषक है उसी प्रकार हिन्दू धर्म भी। इस प्रकार के बहुसंख्यक मन्तव्य इस तथ्य का निदर्शन करते हैं कि गांधीवादी जीवन दर्शन के अन्तर्गत धर्म के प्रति भी जो दृष्टिकोण प्रतिपादित किया है वह सभी प्रकार की संकीर्णताओं और कट्टरताओं से अपेक्षाकृत उदार और व्यापक है।

धर्म का विश्वास आज भी समाज में विद्यमान है। आज का धर्म अपने परम्परागत स्वरूप में नहीं है। अब धर्म सर्वोत्तम रह गया है। वह जीवन का अंश मात्र हो गया है। विज्ञान ने धर्म के अन्ध विश्वासों का अन्त कर दिया। अब मनुष्य को महत्व दिया जाने लगा। मनुष्य अब सर्वोत्तम हो गया। वही अपने जीवन का निर्णायक हो गया है। डार्विन के विकासवाद ने धर्म सम्बन्धी परम्परागत मान्यताओं को भी बदल दिया। अब धर्म को बुद्धि के आधार पर ही प्रमुखतः ग्रहण किया जाता है। कुछ का विश्वास है कि विज्ञान के कारण हमारी आस्थाओं पर निर्मम प्रहार हुआ है। धर्म ईश्वर, इहलोक परलोक आदि से हम जिन आध्यात्मिक मूल्यों से बंधे रहते थे, वे आज समाप्त हो गये हैं। गांव में भी धर्म परिवर्तित हो रहा है। समाज चाहे जितना पिछड़ा हो अथवा भौतिक दृष्टि से विकसित, धर्म किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। धर्म की जीवन शक्ति बड़ी प्रबल है। आज के भौतिक युम में विभिन्न प्रहारों के उपरान्त भी धर्म जीवित है। महायुद्धोत्तर काल में मानव जाति का धर्म के प्रति विशेष झुकाव

हुआ। क्योंकि महायुद्ध अनास्था, कुंठा, निराशा विद्वेश, घृणा, अनिश्चय, भीषण नरसंहार, एवं अत्याचार से मन ऊब चुका था अतः वहीं विश्वास, विश्रान्ति प्रेम, विश्व बन्धुत्व पाने हेतु धर्म का, ईश्वर का आश्रय खोजा जाने लगा।

समकालीन समाज सुधारकों से महर्षि दयानन्द की यह विशेषता रही है कि उन्होंने अपने विचारों को गिने-चुने शिक्षित वर्ग तक ही सीमित नहीं रखा अपितु देश की सामान्य जनता तक पहुंचाया, जिसका प्रभाव अुनकूल रहा। महर्षि दयानन्द ने अपना संपूर्ण जीवन दलितोद्धार, स्त्री शिक्षा प्रचार और बाल विवाह, विधवा विवाह, धर्म और समाज के नाम पर प्रचलित पाखंडों के भंडाफोड़, मूर्ति पूजा के खण्डन, वर्णाश्रम व्यवस्था के मंडन में लगा दिया। शुद्धि आन्दोलन द्वारा उन्होंने हिन्दू समाज के उन लोगों को जो ईसाई या मुसलमान बन गये थे, पुनः हिन्दू समाज में सम्मिलित किया, इस प्रकार स्वामी जी हिन्दू समाज के पुर्नसर्जक थे। आर्य समाज के निर्माण की चेतना का प्रसार किया तथा दूसरी ओर शिक्षा के प्रसार द्वारा भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में आर्य समाज ने अपना उत्तरदायित्व निवाह, समाज निर्माण की चेतना दी और जातीयता का उन्मेष किया।

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्रलिखित ''चंद हसीनों के खतूत'' शीर्षक उपन्यास में गोविन्द हरिशर्मा के समान ही उदार दृष्टिकोण सूफी साहब का है जिनके आध्यात्मिक विचारों के अनुसार मूर्ति में भी खुदा के दर्शन किये जा सकते क्योंकि बुतखाने और काबा में कोई अन्तर नहीं है। इनके अनुसार प्रेम ही जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। प्रेम ही मनुष्य को ऊंचा उठाता है और उसे धर्म के सच्चे स्वरूप समझाने योग्य बनाता है। सूफी साहब की कव्वाली को सुनकर मुहम्मद हुसैन नर्गिस से कहते हैं-नर्गिस तू ठीक कहती है, मेरा दिल कह रहा है कि ये अब तक उसे और तुझे धोखा देने और दुनिया को खुश करने की कोशिश कर रहा था। मगर इस वक्त कव्वाली के बहाने अल्लाह ने मेरे मुंह पर थप्पड़ मारा है।''

इसी प्रकार रत्न चन्द्र धीर लिखित 'कर्तव्य' शीर्षक उपन्यास में भी साम्प्रदायिक एकता का संकेत किया गया है, उसके लिए व्यावहारिक एवं प्रभावी उपाय इंगित किये गये हैं।

**सन्दर्भ सूचीः-**

१. दि इंडियन हेरिटेज, हुमायूं कबीर, पृ० १५६
२. सोसियालॉजी आफ रिलीजन, पी० हा० विनशीन, पृ० ४५२
३. माडर्न रिलीजयस मूवमेंट इन इण्डिया, श्री फरकुहर, पृ० ३८७
४. धर्म और समाज, डॉ० धर्मपल्ली राधाकृष्णन, पृ० ४५
५. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, डॉ रामगोपाल सिंह पृ० १२५
६. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, श्री जयशंकर प्रसाद पृ० १२०
७. चन्द्र भवन, श्री रामगोपाल मिश्र, पृ० १२६
८. आग और धुआं, आचार्य चतुरसेन शास्त्री पृ० ६५
९. हाथी के दांत, श्री आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र पृ० ९७
१०. भूले बिसरे चित्र, श्री भगवती चरण शर्मा, पृ० १०४
११. प्रश्न और मरीचिका, श्री भवगती चरण शर्मा, पृ० २४६
१२. मनुष्यानन्द, श्री पाण्डेय बेचन शर्म उग्र, पृ० ७४
१३. अरण्य, श्री हिमांशु जोशी, पृ० ८
१४. देवगढ़ की मुस्कान, श्री वृन्दावन लाल वर्मा, पृ० १३६
१५. खंजन नयन, श्री अमृत लाल नागर, पृ० ६०
१६. चंद हसीनों के खतूत, श्री पाण्डेय बेचन शर्मा, पृ० ८१
१७. सबहि नचावत राम गोसाई, श्री भगवती चरण वर्मा, पृ० ६६
१८. गांधी विचार दोहन, श्री किशोरी लाल, पृ० ४१४

❑❑❑